


दैनिक भास्कर

Date:13-09-19

प्लास्टिक नहीं की अपील अच्छी पर विकल्प कहां है ?

संपादकीय



देश में ही नहीं विश्व मंचों से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने लगातार देश को 2 अक्टूबर से प्लास्टिक-शून्य करने की प्रतिबद्धता जताई और उसे फिर मथुरा के अपने 1 सितंबर के भाषण में दोहराया। वे ऐसे नेता हैं, जिनकी बात देश सुनता ही नहीं है, बल्कि काफी हद तक मानता भी है। लिहाजा समाज की भूमिका वाले परिवर्तन साकार करने में उनकी अपील कारगर होती है। स्वच्छ भारत एक उदाहरण है। प्लास्टिक का इस्तेमाल भारतीय समाज की आदत बन गया है, लेकिन जब

यह लाया गया था तब (और शायद आज भी) वह सबसे बेहतरीन विकल्प था। किंतु आज यह अपील विकल्पहीनता में की जा रही है। सरकार के अधिकारी भी अभी यह नहीं बता सके हैं कि सरकारी उपक्रम या उनके परोक्ष निर्देश पर चलते वाली सस्थाएं, कैसे और किस समतुल्य मटेरियल और सुविधा से 'फाड़ो और फेंको' दूध के प्लास्टिक पैकेट अगले 22 दिनों में बदलेंगी और पानी की बोतलों का क्या विकल्प तैयार किया गया है। क्या राज्यों में मौजूद सरकारी-कोऑपरेटिव दुग्ध संस्थाएं वैकल्पिक पैकेजिंग व्यवस्था कर चुकी हैं? केन्द्रीय उपभोक्ता मामलों के मंत्री रामविलास पासवान की सदारत में हुई एक बैठक में प्लास्टिक उद्योग के लोगों ने कहा कि कुल उद्योग साढ़े सात लाख करोड़ रुपए का है और करोड़ों लोग प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से इससे जुड़े हैं। बेशक प्लास्टिक पर्यावरण के लिए नुकसानदेह है, लेकिन क्या पॉली-एथलीन ट्राफथालेट का 'सस्ता, सुंदर और टिकाऊ' विकल्प मिल गया है और उसका उत्पादन शुरू हो गया है? एकल-नेतृत्व वाली सरकार के मुखिया द्वारा बार-बार ऐलान करने से राज्य और केंद्र के अधिकारियों पर दबाव है, लिहाजा वे डंडा चलाकर और मीडिया में विजुअल्स दिखाकर अपने राजनीतिक आकाओं को खुश कर रहे हैं, जबकि जनता और व्यापारी दहशत में सरकार के एक अच्छे कदम से नाराज हो रहे हैं। केवल वोट मिलने को जनता की स्वीकार्यता का प्रतीक समझना गलत होगा। समय के साथ लोग भोगे यथार्थ के आधार पर मत बनाने लगते हैं। ताज़ा सख्त यातायात कानून के डर की वजह से जनता गाड़ी के कागजात, ड्राइविंग लाइसेंस और प्रदूषण प्रमाण-पत्र के लिए 18 घंटे लाइनों में खड़ी हो रही है और यातायात विभाग में लोगों की इस मजबूरी के कारण घूस की दर दस गुना हो गई है। करीब 137 करोड़ की आबादी और कानून को ठेंगा दिखाने की आदत डेडलाइन बनाने से नहीं, सख्ती-सुविधा के मिश्रण से ही आएगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:13-09-19

कुपोषण से जंग

संपादकीय

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने हाल ही में अपने मासिक रेडियो कार्यक्रम 'मन की बात' में कहा कि कुपोषण के खिलाफ आंदोलन तेज कर एक बड़ा जनांदोलन खड़ा करने की बारी है। उनकी यह बात सुविचारित है और इसकी गहन आवश्यकता है। तमाम आर्थिक प्रगति, गरीबी में कमी, अतिशय खाद्यान्न उत्पादन और सरकार द्वारा लोगों को भोजन उपलब्ध कराने की योजनाओं के बावजूद देश में कुपोषण की समस्या बनी हुई है। संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य कार्यक्रम की 2019 की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा विश्लेषण रिपोर्ट (2015-16 के आंकड़ों पर आधारित) की बात करें तो देश की आबादी का 38.4 फीसदी हिस्सा भीषण कुपोषण से जूझ रहा है जबकि करीब 35.7 फीसदी बच्चों का वजन सामान्य से कम है और उनमें भी 58.5 फीसदी रक्त की कमी से जूझ रहे हैं। इससे भी बुरी बात यह है कि कुपोषण की समस्या गरीबों और अमीरों दोनों में विद्यमान है। हालांकि अमीरों में इसका स्वरूप मोटापे, पोषण के असंतुलन और इससे जुड़ी स्वास्थ्य समस्याओं का है।

स्पष्ट है कि खाद्य सुरक्षा से जुड़ी मौजूदा पहल जिनमें भोजन का अधिकार अधिनियम और ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) आदि शामिल हैं, उनके चलते अल्प पोषण और भूख की समस्या में वांछित कमी नहीं आई है। हालांकि भूख से होने वाली मौतों में कमी आई है जबकि अतीत में यह आम हुआ करती थी। वृद्धि में धीमापन, कम वजन, मस्तिष्क का अपर्याप्त विकास और कमजोर प्रतिरक्षा जैसी समस्याएं अपूर्ण, असंतुलित और अपर्याप्त पोषण की प्रमुख निशानी हैं। देश में श्रम की कम उत्पादकता के लिए भी काफी हद तक कुपोषण को जिम्मेदार माना जाता है।

सरकार ने मार्च 2018 में राष्ट्रीय पोषण अभियान की शुरुआत की थी। इसका लक्ष्य बच्चों, बच्चियों और महिलाओं में कम वजन और लंबाई न बढ़ने, अल्प पोषण और रक्ताल्पता जैसी समस्याओं में सालाना 2 से 3 फीसदी की कमी लाना था। बाद में इस अभियान का नाम बदलकर पोषण अभियान कर दिया गया और 2022 तक कुपोषण मुक्त भारत बनाने की महती जिम्मेदारी इसे सौंप दी गई।

अगर हालात ऐसे ही बने रहे तो इस महत्वाकांक्षी लक्ष्य को हासिल कर पाना मुश्किल होगा। पोषण आधारित अधिकांश योजनाएं सीमित तरीके से काम करती हैं और एक समय में एक या कुछ ही लक्ष्यों को हासिल करने पर केंद्रित रहती हैं, बजाय कि एक साथ इसके तमाम स्रोतों पर हमला करने के। इसके अलावा उनके बीच आपस में कोई तालमेल भी नहीं है। उनके लिए आवंटित फंड अक्सर इस्तेमाल ही नहीं हो पाता। इतना ही नहीं स्कूलों में मध्याह्न भोजन और आंगनवाड़ी में पूरक आहार समेत इनमें से कई योजनाएं केवल भोजन मुहैया कराने पर केंद्रित रहती हैं और उनका पोषण से कोई लेनादेना नहीं होता।

ऐसे में कुपोषण से लड़ने की बुनियादी नीति में बदलाव लाते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर जोर देना चाहिए। इसका एक तरीका है सरकारी योजनाओं के तहत वितरित होने वाले भोजन में विविधता लाना। इसके लिए पोषक अनाज, अंडे, दूध, सोयाबीन उत्पादों को शामिल किया जा सकता है। अब तो गेहूं, चावल, नमक, खाद्य तेल और दूध आदि को लौह, आयोडिन, जिंक, विटामिन ए और डी जैसे जरूरी खनिजों और विटामिनों के माध्यम से बेहतर बनाने के तरीके भी आ चुके हैं। ऐसा करके भी कुपोषण से होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को दूर किया जा सकता है। ऐसी तकनीक भी आ चुकी है जो फसलों में ही जरूरी विटामिन या खनिज शामिल कर सकती हैं। उदाहरण के लिए गोल्डन राइस में ज्यादा विटामिन ए होता है। यह कई देशों में नेत्रहीनता दूर करने में सहायक है। भारत भी कुपोषण खत्म करने के लिए ऐसी नीतियों की मदद ले सकता है।

Live
हिन्दुस्तान.com

Date:12-09-19

अब आसान नहीं दुनिया को भरमाना

शशांक, (पूर्व विदेश सचिव)



संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद की बैठक में पाकिस्तान ने कई रणनीतियों के साथ भारत को घेरने की कोशिश की थी। उसकी मंशा थी कि कश्मीर में मानवाधिकार हनन के आरोप लगाकर नई दिल्ली पर दबाव बनाया जाए। इस तरह के तीर इन दिनों निशाने पर लगते भी हैं, क्योंकि दुनिया भर में मानवाधिकारों का उल्लंघन एक बड़ा मसला बनकर उभरा है। फिर चाहे वह इराक, सीरिया या लीबिया से जान बचाकर भागे शरणार्थियों के मानवाधिकारों का मामला हो या फिर म्यांमार के रोहिंग्या मुसलमानों का 'रिस्पॉन्सिबिलिटी टु प्रोटेक्ट' (आर2पी) के तहत पश्चिमी देश इन

मसलों को गंभीरता से लेते हैं। अपनी सामरिक ताकत उन्होंने इसी में झोंक रखी है। पाकिस्तान का मानना था कि वह कश्मीर में मानवाधिकार उल्लंघन की तोहमत भारत पर लगाए और पश्चिमी देशों को नई दिल्ली के खिलाफ खड़ा कर दे।

उसकी यह भी सोच थी कि ऐसा करने से खासतौर से घाटी में पाकिस्तानपरस्त आतंकियों की करतूत छिप जाएगी और वहां के आम जनता की कथित मुश्किलों पर दुनिया भर का ध्यान टिक जाएगा। इससे बलूचिस्तान, पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर, सिंध जैसे इलाकों में पाकिस्तानी फौज के दमन को भी कोई याद नहीं करेगा। यही वजह थी कि जिनेवा में मौजूद पाकिस्तान के विदेश मंत्री शाह महमूद कुरैशी ने अपने बयान में जान-बूझकर जम्मू-कश्मीर को 'भारत का राज्य' कहा। ऐसा पहली बार कहा गया है। इसके पीछे की रणनीति यही थी कि बैठक में पाकिस्तान सिर्फ मानवाधिकारों के

हनन को तवज्जो देना चाहता था, अपने यहां पल रहे आतंकवाद को नहीं। सुखद है कि भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने अपने जवाब से पाकिस्तान के तमाम झूठ को बेपरदा कर दिया और उसकी मंशा धरी की धरी रह गई।

भारत के हाथों बार-बार मात खाने के बाद भी पाकिस्तान ने कश्मीर मसले को हर अंतरराष्ट्रीय मंच पर उठाने की कोशिश की है। इसकी मूल वजह यही है कि वह इन दिनों कई चुनौतियों से जूझ रहा है। अपने यहां से आतंकियों को खत्म करने का बड़ा दबाव उस पर है। भले ही, अफगानिस्तान में अमेरिकी सैनिकों की जल्द वापसी को मुमकिन बनाने में डोनाल्ड ट्रंप उसकी महत्वपूर्ण भूमिका देख रहे हैं, लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति पहले यह कह चुके हैं कि आतंकवाद से जंग के नाम पर इस्लामाबाद वाशिंगटन को वेबकूफ बनाता रहा है। उन्होंने पाकिस्तान को दी जाने वाली आर्थिक मदद भी रोक दी थी। मगर अब बदलते घटनाक्रम से पाकिस्तान को लगने लगा है कि उसका वह सुनहरा दौर लौट आया है, जब इस्लामी मुल्कों और पश्चिम के लिए वह आंखों का तारा हुआ करता था। जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद- 370 हटाने के फैसले पर बुरी तरह बौखलाना उसके इसी भ्रम का संकेत है।

भारत पर दबाव बनाने के लिए पाकिस्तान ने पहले सुरक्षा परिषद में शिकायत की। यहां चीन की मदद से वह कश्मीर मसले पर एक विशेष बैठक करवाने में जरूर सफल रहा, लेकिन बाकी तमाम देशों ने इसमें अपनी अनिच्छा जताई। वे तो आज भी जम्मू-कश्मीर में किए गए सांविधानिक बदलाव को भारत का आंतरिक मामला मानते हैं। यहां से मुंह की खाने के बाद पाकिस्तान ने मानवाधिकार हनन के आरोप लगाने का फैसला किया। मगर इसमें भी उसे सफलता नहीं मिल सकी। अब लगता है कि सितंबर के अंत में होने वाली संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान फिर से भारत के खिलाफ झूठे आरोप परोसेंगे।

सुरक्षा परिषद से ज्यादा समर्थन पाकिस्तान को मानवाधिकार परिषद की बैठक में मिला है। ऐसा इसलिए, क्योंकि मानवाधिकारों का हनन कोई देश नहीं चाहता। मगर विडंबना है कि चीन, पाकिस्तान जैसे राष्ट्र दूसरों पर तो उंगली उठाते हैं, लेकिन अपने गिरेबान में झांकना नहीं चाहते। बीजिंग को हांगकांग के बिगड़ते हालात नहीं दिखते, लेकिन आम कश्मीरियों की कथित दुर्दशा उसकी नजरों में आ जाती है। चीन के विदेश मंत्री वांग यी की इस्लामाबाद यात्रा के बाद जारी पाकिस्तान-चीन संयुक्त बयान में जम्मू-कश्मीर का जिक्र होना कुछ-कुछ ऐसा ही है। भारत ने उचित ही इस बयान पर गहरी आपत्ति जताई है। चीन के साथ हमारे कई तरह के द्विपक्षीय रिश्ते हैं, इसलिए संभव है कि कुछ हद तक भारत समझौते का रुख अपनाए, लेकिन उचित समय पर इसका माकूल जवाब देना हमारी सरकार जानती है।

मानवाधिकार परिषद में अपना पक्ष पूरी तरह रखना भारत के लिए जरूरी था। भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने इसके लिए खास रणनीति बनाई। एक तरफ तो उसने पाकिस्तान के तथ्यहीन आरोपों का उचित जवाब दिया, तो दूसरी तरफ उसके घरेलू हालात को पूरी तरह जाहिर भी नहीं किया। दरअसल, भारत सरकार मानती है कि पाकिस्तान को एक और मौका मिलना चाहिए। संभव है, आतंकवाद के खिलाफ वह काम करने को तैयार हो जाए। अमेरिकी या अन्य देशों का दबाव उसे ऐसा करने के लिए मजबूर कर सकता है। इसीलिए उसके कच्चे-चिट्ठे को हम अभी अंतरराष्ट्रीय मंचों पर नहीं खोल रहे। हमारा यही मानना है कि द्विपक्षीय रिश्तों को बेहतर बनाने की हरसंभव कोशिश की जानी चाहिए। बेशक यह रास्ता तंग है, लेकिन इसे पूरी तरह बंद करने से एशिया महाद्वीप की स्थिरता प्रभावित हो सकती है।

रही बात मानवाधिकारों के हनन के आरोपों की, तो इस मामले में भारत के दामन पर कोई दाग नहीं है। मानवाधिकारों की रक्षा भारत की प्राथमिकता में शामिल है। मानवाधिकार परिषद की बैठक में कुछ देशों ने यदि हमारी आलोचना की

भी, तो इसलिए कि मानवाधिकार के मानक काफी ऊंचे हैं और जम्मू-कश्मीर में जो प्रतिबंध लगाए गए हैं, वे इन मानकों पर खरे नहीं उतरते। हालांकि सच यह भी है कि जम्मू-कश्मीर में कफ्र्यू लगाना जरूरी था, ताकि आतंकी गतिविधियों की कमर तोड़ी जा सके। घाटी को लेकर भारत की मंशा स्पष्ट है- आतंकी घटनाएं न हों और अलग-थलग पड़े यहां के लोगों को मुख्यधारा में शामिल किया जाए। पश्चिमी देश इसे बखूबी समझते भी हैं, लेकिन कूटनीति का तकाजा है, अपने-अपने हितों को तवज्जो देना। संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देश इसी नीति का पोषण कर रहे हैं।



THE HINDU

Date:12-09-19

Lynching, not murder

Suspicion that the Ansari case is being diluted underscores need for anti-lynching law

Editorial

The decision of the Jharkhand police that the killing of Tabrez Ansari, 24, in June did not amount to murder is quite debatable. They have chosen to charge the 11 men arrested for his lynching with culpable homicide that does not amount to murder. To the layman, it would seem strange that those who labelled Ansari a thief, tied him to a pole and assaulted him for hours at night, are not going to be prosecuted for murder. It is not clear if the police are going to include accounts that claim he was forced to chant 'Jai Shri Ram'. This aspect may help establish a clear sectarian motive on the part of the crowd to turn into a lynch mob and attack him. It is known that it was only the arrival of the police that ended the assault on him. That the police have chosen to prosecute them for culpable homicide shows that the causal link between the assault on his person and his death has been established. It is true that the line between culpable homicide and murder is thin. It is the courts that usually assess the circumstances in which a homicide took place and decide whether it amounted to murder or not. Murder is punishable under Section 302 with death or life imprisonment, while forms of culpable homicide attract either a life term or 10 years in prison under Section 304 of the IPC.

The official explanation for concluding that it was not murder is unconvincing. The two-pronged argument is that the medical report gave the cause of death as 'cardiac arrest due to stress', and the fact that the victim did not die immediately, but succumbed some days later. The police also say a second opinion from forensic experts was that the death was caused due to a combination of heart attack and the injuries he suffered. It is quite obvious that merely attributing death to a heart attack is meaningless without referring to the trauma caused by the physical assault. It may not make a legal difference to the prosecution whether the accused are given a life term for murder or mere culpable homicide not amounting to murder. However, invoking only the offence of culpable homicide not amounting to murder may make it easier for the defence to claim that their offence lacked premeditation or intention. Instead, they could claim that they were deprived of their self-control by the "provocation" given by the victim. The narrative in recent lynching incidents that it was the victim who was at fault may come in for needless reiteration unless the prosecution resolutely makes a case of murder. The suspicion that the charge is being diluted underscores the need for a special anti-lynching law. Such a law could cover acts

of group violence, whether spontaneous or planned, so that those who join lynch mobs do not gain from any ambiguity about their intentions.
